P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-8* ISSUE-1* September- 2020
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

प्राचीन भारत में स्थानीय शासन संस्थाओं का विकास

Development of Local Government Institutions in Ancient India

Paper Submission: 19/09/2020, Date of Acceptance: 26/09/2020, Date of Publication: 27/09/2020

सरोज हरीत
सह आचार्य एवं विभागध्यक्ष
राजनीति विज्ञान विभाग,
राज. लोहिया कॉलेज, चूरू,
राजस्थान, भारत

सारांश

सन् 1947 में भारत के स्वतंत्र होने पर यह आषा की गई कि लोकतंत्र को सुदृढ़ करने हेतु लोकतंत्र का विकेन्द्रीकरण किया जायेगा तथा स्थानीय संस्थान के विकास को नवीन दिषा व गति मिलेगी। गांधीजी गांव को शासन की मूल इकाई बनाना चाहते थे तथा वे पंचायती राज के लोकतंत्र के विकेन्द्रीकरण हेतु अनिवार्य मानते थे। गांधी जी की मान्यता थी कि यदि हम चाहते है कि गांवों को न केवल जीवित रहना चाहिए अपितु उनको बलवान तथा समृद्ध बनना चाहिए। तो हमारे दृष्टिकोण में गांव की प्रधानता होनी चाहिए। उनकी धारणा थी कि सच्ची लोकषाही केन्द्र में बैठे हर दस–बीस व्यक्ति नहीं चला सकते। यह तो नीचे से गांव के हर व्यक्ति द्वारा चलायी जानी चाहिए। यद्यपि स्थानीय शासन व्यवस्था प्रत्येक प्रकार की शासन व्यवस्था में किसी न किसी रूप में विद्यमान रहती है किन्तु लोकतंत्र में तो यह अपरिहार्य होती हैं। लोकतंत्र को विकेन्द्रीकृत करने का माध्यम स्थानीय शासन संस्थाएं ही है। स्थानीय शासन लोगों को यह अवसर प्रदान करता है कि वे स्थानीय मामलों का प्रबंध स्वयं अपनी सक्रिय भागीदारी करे।

After India became independent in 1947, it was hoped that democracy would be decentralized to strengthen democracy and the development of local institution would get new direction and momentum. Gandhiji wanted the village to be the basic unit of governance and he considered it mandatory for the decentralization of democracy of Panchayati Raj. Gandhiji believed that if we want the villages to not only live but also become strong and prosperous. So in our view, the village should have primacy. His belief was that every ten or twenty people sitting in the true Lokshahi center could not run. It should be run by everyone from the village. Although local governance is present in every form of governance in some form, but in a democracy it is unavoidable. Local governance institutions are the medium to decentralize democracy. Local governance provides an opportunity to the people to take up their own active participation in the management of local affairs.

मुख्य शब्द : स्थानीय स्वायत्त शासन, प्रतिनिधित्व, शानाधिकारी, उत्तरदायित्व, मनुस्मृत्ति गणराज्य, पंचायत, विकेन्द्रीकरण।
Local Autonomous Governance, Representation, Shanadhikari, Responsibility, Manusmriti Republic, Panchayat, Decentralization.

प्रस्तावना

स्वायत्तशासी संस्थाएं लोकतंत्र का मूल आधार है। सच्चे लोकतंत्र की स्थापना तभी मानी जाती है जबकि देश के निचले स्तरों तक लोकतांत्रिक संस्थाओं का प्रसार किया जाए एवं उन्हें स्थानीय विषयों का प्रशासन चलाने में स्वतंत्रता प्राप्त हो। वस्तुतः ये संस्थाएं लोकतंत्र की सर्वश्रेष्ठ पाठशाला एवं लोकतंत्र की सर्वश्रेष्ठ प्रत्याभूमि हैं। स्थानीय संस्थाएं सरकार के दूसरे अंगों से बढ़कर जनता को लोकतंत्र की सुरक्षा देती है। साथ ही विकेन्द्रीकरण एवं शक्ति से भागीदारी के प्रति निष्ठा व्यक्त करती है। पंचायती राज लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का एक रूप है, जिसमें लोगों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करके पूर्व निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रयास किये जाते हैं। अच्छी शासन व्यवस्था के मुख्य लक्षणों के अन्तर्गत व्यवस्था को अधिकाधिक क्षमतावान

बनाने हेतु जन आवश्यकताओं को पूर्ण करना, जन समस्याओं का निराकरण, तीव्र आर्थिक प्रगति, सामाजिक सुधारों की निरन्तरता, वितरणात्मक न्याय एवं मानवीय संसाधनों का विकास आदि शामिल है। पंचायती राज का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण जीवन का सर्वांगीण विकास करना है। इसके अतिरिक्त कृषि उत्पादन में वृद्धि, ग्रामीण उद्योगों का विकास, परिवार कल्याण कार्यक्रम, पशु संरक्षण, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य, शिक्षा व्यवस्था आदि का उचित प्रबन्ध करके, ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ता प्रदान करना भी पंचायती राज का मौलिक उद्देष्य है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. स्थानीय शासन का अर्थ और परिभाषा जानना।
2. प्राचीन भारत में स्थानीय शासन वाली संस्थाओ की जानकारी करना।
3. इन स्थानीय शासन संस्थाओ के अधिकार और शक्तियों को जानना।

स्थानीय शासन का अर्थ :

स्थानीय शासन का अर्थ भारतीय संविधान की सातवीं अनुसूची की पांचवी प्रविष्टि में लिखा है ''स्थानीय शासन अर्थात् नगरनिगमों, सुधार न्यासों, जिला परिषदों, खनन बस्ती, प्राधिकरणों तथा स्थानीय स्वषासन अथवा ग्राम प्रशासन के प्रयोजनों के लिए अन्य स्थानिय प्राधिकारियों का गठन तथा शक्तियां।'' इस प्रकार स्थानीय शासन से अभिप्राय ऐसी संस्थाओं के शासन से है जो स्थानीय स्तर की है और इन्हें स्थानीय स्तर पर निर्वाचित प्रतिनिधि संचालित करते हैं। इस संस्थाओं को अपने कार्यक्षेत्र में पर्याप्त स्वायत्तता प्राप्त होती है किंतु यह अपने क्षेत्र में सम्प्रभु नहीं होती। राष्ट्रीय या राज्य सरकार के नियंत्रण में रहते हुए इन्हें स्थानीय मामलों के शासन के दायित्व का निर्वाह करना होता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि स्थानीय शासन का अर्थ उस शासन से है जिसका सम्बन्ध किसी स्थान विषेष से हो एवं उस स्थान विषेष के निवासियों द्वारा ही उसका संचालन हो। दूसरे शब्दों में, स्थानीय व्यक्ति स्वयं अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से स्थानीय मामलों का प्रबन्ध करें।

स्थानीय शासन की प्रमुख परिभाषाएं

जॉन. जे. क्लॉक के अनुसार ''स्थानीय शासन एक राष्ट्रीय या राज्य शासन का वह भाग है जो ऐसे विषयों पर प्रमुख रूप से विचार करता है जिसका सम्बन्ध एक विशेष जिले अथवा स्थान विशेष के लोगों से होता है। यह संस्थाएं प्रायः निर्वाचित होती है तथा केन्द्रीय शासन के अधीन रहकर कार्य करती है।'' गिलक्राइस्ट का मत है कि ''स्थानीय संस्थाएं अधीनस्थ संस्थाएं होती हैं तथा इन्हें सीमित क्षेत्र में कार्य करने की स्वतन्त्रता प्राप्त होती है।'' जी. डी. एच. कौल ने माना है कि ''स्थानीय शासन ऐसा शासन है जो सीमित क्षेत्र में प्राप्त अधिकारों का उपभोग करता है।'' एल. गोल्डिंग के अनुसार ''स्थानीय शासन एक बस्ती के लोगों द्वारा उनके मामलों का स्वयं प्रबन्ध करता है।''

भारत में स्थानीय स्वायत्त शासन की संस्थाओं को प्राचीनकाल से ही महत्व प्राप्त था एवं इन्हें प्रोत्साहन दिया जाता था। ऋग्वेद तथा आयुर्वेद में सभा, समिति एवं विदथ जैसी संस्थाओं का उल्लेख मिलता है। कुछ विद्वानों का मत है कि विदथ सम्भवतः जनसभा थी जिसमें सभी वयस्क स्त्री–पुरूष समान रूप से भाग लेते थे। यह धार्मिक एवं युद्ध सम्बन्धी कार्य विशेष रूप से करती थी। सम्भवतः इसकी बैठकें आयोजित होती थीं तथा इसके सदस्य परस्पर वाद–विवाद के बाद किसी निष्कर्ष पर पहुंचते थे। यह विदथ संस्था स्थानीय स्वायत्त शासन का प्रतिनिधित्व करती थी। वैदिक युग में राज्य सरकार में अधिक विषाल नहीं होते थे तथा उनकी राजधानी का आकार भी छोटा होता था। प्रत्येक गांव में जनता की 'सभा' होती थी। और राजधानी के सम्पूर्ण राज्य की एक केन्द्रीय लोकसभा होती थी जिसे 'समिति' कहा जाता था। राजा स्वामी होते हुए भी निरंकुश नहीं था। सभा एवं समिति नामक संस्थाएं उस पर नियन्त्रण रखती थी। वैदिक युग में सभा एवं समिति को जो स्वरूप था वह पूर्णतः समाप्त नहीं हुआ था अपितु उसका स्थान 'पुर' तथा 'जनपद' ने ले लिया। रामायण के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि उस समय प्रशासन पुर तथ जनपद दो भागों में विभक्त था। गांवों की गणना जनपद में की जाती थी तथा वहां के निवासी जनपदा कहलाते थे।

वाल्मीकि रामायण में पौर तथा जनपदा सभाओं की सत्ता का उल्लेख मिलता है। वाल्मीकि रामायण के अनुसार जब कौशल जनपद के राजा दशरथ ने प्राचीन भारतीय राजाओं की परम्परा का अनुसरण कर राम को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहा तो उन्होंने पौर–जनपद की सम्मति ली। डॉ. के. पी. जायसवाल के अनुसार रामायण के अध्ययन से ज्ञात होता है कि जनपदों के पौरों तथा दूसरे अन्य लोगों के साथ मिलकर युवराज राम के राज्याभिषेक का सर्वसम्मति से निर्णय लिया था। अपने मत के समर्थन में जायसवाल ने अयोध्याकाण्ड का वह श्लोक उद्धृत किया है जिसमें महाराज दषरथ के सामने यह निवेदन करने के लिये कहा गया है कि पौर तथा जनपद करबद्ध होकर राम के राज्याभिषेक की प्रतीक्षा कर रहे हैं। ग्राम–महाग्राम व घोष का उल्लेख भी रामायण में मिलता है। ग्राम के निकट के नगर पट्टन कहलाते थे जो जनपदों के लिये मंडी का कार्य करते थे। महाभारत में शांतिपर्व के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि शासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम थी उसके ऊपर क्रमषः दस, बीस, शत तथा सहन ग्राम समूहों की इकाईयां थी। ग्राम शासन का प्रमुख अधिकारी 'ग्रामिक' कहलाता था। अपने ग्राम तथा उसके निवासियों की स्थिति विशेषतः कठिनाइयों की सूचना वह अपने श्रेष्ठ दस ग्राम अधिकारियों (दशप) को देता था। इसी प्रकार दशत विंषत्याधिप को तथा विंषत्याधिप शत् ग्रामपाल को और शतग्रामपाल, शतग्रामाध्यक्ष सहन ग्रामपति को अपने–अपने क्षेत्र से सम्बन्धित आवष्यक सूचनाएं देते थे और उनके आदेशानुसार शासन करते थे। ये अधिकारी अपने अधिकार क्षेत्र में स्थानीय कर संग्रहित करते थे तथा अपने क्षेत्र की रखा के दायित्व का भी निर्वहन करते थे। ग्रामों के अतिरिक्त राज्य में कुछ बड़े तथा छोटे नगर भी थे। नगरों का शासनाधिकारी 'स्वार्थचिंतक' कहलाता था। वह अपने अधीनस्थ कर्मचारियों का स्वयं तथा गुप्तचरों द्वारा निरीक्षण करता था। उनके अन्याय से प्रजा की रक्षा करना उसका कर्तव्य था। ये सभी प्रादेषिक अधिकारी एवं सचिव के

निर्देशन में कार्य करते थे। आदिपर्व में ग्राम मुख्य का उल्लेख मिलता है जो सम्भवतः ग्रामीण जनता का प्रतिनिधि होता था। सभापर्व में ग्राम पंचायतों का उल्लेख मिलता है किन्तु यह स्पष्ट नहीं होता कि पंचों की नियुक्ति राजा द्वारा की जाती थी या ये जनता द्वारा निर्वाचित होते थे। इसी प्रकार निगम एवं उसके प्रधान का भी उल्लेख मिलता है किन्तु उनके गठन की विधि स्पष्ट नहीं हो पाती।

मनु द्वारा रचित मनुस्मृति में स्थानीय स्वायत्त शासन के व्यवस्थित स्वरूप पर बल दिया गया है तो शासन की शक्तियों एवं कार्यों के विकेन्द्रीकरण के महत्व को स्पष्ट करते हुए मनु ने लिखा है कि राज्य में शक्तियों का विकेन्द्रीकरण होना चाहिये तथा प्रजा में स्वशासन की प्रवृत्ति होनी चाहिये। मनु ने इस हेतु राजा को एक पृथक मंत्री को नियुक्त कर उत्तरदायित्व सौंपने का परामर्श दिया। शासन की सबसे छोटी इकाई 'ग्राम' को माना गया तथा उसके ऊपर क्रमशः दस, बीस, शत तथा सहó ग्राम समूहों की इकाइयों के संगठन का उल्लेख है। प्रत्येक ग्राम के प्रशासन के लिये उत्तरदायी अधिकारी के लिये मनु ने 'रक्षक' शब्द का प्रयोग किया है। रक्षक का कार्य प्रजा से कर एकत्रित करना तथा ग्राम में शान्ति एवं व्यवस्था बनाये रखना था। प्रत्येक ग्राम संगठन का रक्षक अपने में उच्च ग्राम समूह के संगठन के रक्षक के प्रति उत्तरदायी था। इस प्रकार मनु ने न केवल स्थानीय शासन संगठन के स्वरूप का व्यवस्थित रूप से उल्लेख किया है अपितु प्रत्येक इकाई का दूसरी इकाई से सम्बन्धों का स्पष्ट निर्धारण भी किया है। स्थानीय शासन में 'ग्राम' का अर्थ केवल गाँव नहीं था, सम्भवतः वह नगर का भी द्योतक था। मनुस्मृति से ज्ञात होता है कि ग्राम की मुखिया 'ग्रामणी', 'ग्रामिक', 'ग्रामाधिपति' होता था।

महर्षि गौतम ने स्थानीय संगठनों की विधायिका शक्ति राज्य शक्ति में ही निहीत मानी तथा उन्होंने स्थानीय संगठनों को धर्म विरूद्ध नियम निर्माण का अधिकार नहीं दिया किन्तु मनु का विचार था कि राजा स्थानीय संगठनों के संविधान की समीक्षा करके अपने धर्म का प्रतिपादन करें। बृहस्पति व नारद ने भी स्थानीय संगठनों का उल्लेख किया है तथा प्रतिपादित किया है कि राजा इन संगठनों के विधान का संरक्षण करे। वशिष्ठ राज्य द्वारा स्थानीय संगठनों पर प्रशासकीय नियंत्रण को स्वीकृत करते हैं। मनु का विचार था कि यदि स्थानीय संगठन अपने नियमों तथा सदस्यों द्वारा किये गये समझौतों का पालन नहीं करते हैं तो राज्य शक्ति द्वारा ऐसा करने के लिये उन्हें बाध्य कर सकता है। स्मृतियों के विवेचन से स्पष्ट होता है कि राजा स्थानीय संगठनों के नियमों को निगम एवं उसके प्रधान का भी उल्लेख मिलता है किन्तु उनके गठन की विधि स्पष्ट नहीं हो पाती। ग्राम का स्थानीय शासन स्वतः संचालित था। कर आक्रमण, रक्षा आदि बातों के अतिरिक्त केन्द्रीय शासन किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करता था, केवल एक सामान्य नियन्त्रण मात्र था। केन्द्रीय राज्यों ने ग्राम संस्थाओं को बहुत से अधिकार दे दिये थे। जिस प्रकार पूरे ग्राम की एक सामान्य व्यवस्था थी उसी प्रकार श्रेणी, गण एवं नैगम के कार्य संचालन के लिये बहुत से नियम व परम्परायें थी। मनु, नारद एवं बृहस्पति ने इस सम्बन्ध में व्यवहारिक चर्चाएं की है। कौटिल्य ने ऐसी स्थानीय संस्थाओं का उल्लेख किया है जो प्रायः राजा को हस्तक्षेप से मुक्त रहती थी। ''अर्थशास्त्र'' में प्रतिपादित किया है कि राजा को ऐसे गाँव की रचना करनी चाहिए जिसमें कम से कम 100 परिवार तथा अधिक से अधिक 500 परिवार रहते हो। कौटिल्य ने राजा को सुझाव दिया कि गाँवों की संगठन व्यवस्था इस प्रकार की जाये कि प्रत्येक 800 गाँवों के केन्द्र में एक स्थानीय, 400 गाँवों के केन्द्र में एक द्रोणमुख, 220 गाँवों के केन्द्र में कार्वटिक तथा दस गाँवों के समूह के केन्द्र में संग्रहण हो। कौटिल्य ने नगर के लिये पुर शब्द का प्रयोग किया है तथा पुर के प्रधान के लिये ''नागरिक'' शब्द का प्रयोग किया है। नागरिक को कौटिल्य ने नगर की सम्पूर्ण कानून एवं व्यवस्था तथा प्रशासनिक कार्यों के लिए उत्तरदायित्व सौंपा। कौटिल्य ने नगर को कई भागों में विभक्त किया तथा नगर के प्रत्येक एक चौथाई भाग को ''स्थानिक'' नाम के अधिकारी के अधीन रखा। प्रत्येक दस, बीस, चालीस परिवारों पर एक गोप की नियुक्ति की व्यवस्था की जिसका कार्य इन परिवारों स्त्री–पुरूषों की जाति, गौत्र, नाम तथा व्यवसाय की जानकारी रखने के साथ ही उनके आय तथा व्यय की जानकारी भी रखता था।

कोटिल्य के अर्थशास्त्र में प्रशासन की व्यवस्था

1. ग्रामीण	स्थानीय	द्रोणमुख	कार्बटिक	संग्रहण	गाँव
	800 गाँव	400 गाँव	200 गाँव	10 गाँव	100 से 500 परिवार

2. शहरी	पुर	नागरिक	स्थानीय	गोप
	(नगर)	(प्रत्येक नगर पर)	(नगर का चौथाई भाग)	(कुछ परिवारो पर)

मौर्यकाल में ग्राम शासन की सबसे छोटी ईकाइ थी तथा ग्राम की जनता स्वयं अपने मुखिया का चुनाव करती थी जिसे ग्रामिक कहा जाता था। चन्द्रगुप्त मौर्य के शासनकाल में शासन शक्तियों का विकेन्द्रिकरण किया गया था। मेगस्थनीज ने उस समय के पाटलिपुत्र नगर के शासन के वर्णन में लिखा है कि नगर का कार्यभार पाँच–पाँच सदस्यों वाली छः समितियों में विभक्त था। इन समितियों में विभक्त था। इन समितियों का कार्य उचित बाट एवं माप, व्यापार तथा वाणिज्य का निरीक्षण, जन्म एवं मृत्यु के अभिलेख रखना, विदेशियों का स्वागत–सत्कार तथा बिक्रीकर की वसूली आदि था। के. पी. जायसवाल का मत है कि पाटलिपुत्र की यह नगरपालिका सरकार वास्तव में हिन्दु सरकार की 'पौर' संस्था थी। ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में दक्षिण भारत में सातवाहन, शासनकाल में नगरों एवं ग्रामों में स्थानीय राजनीतिक संस्थाएँ भी विद्यमान थी। चोलवंश के शासन काल में भी दक्षिण भारत में ग्राम परिषदें स्वायत संस्थाओं

के रूप में अस्तित्व में थी। पश्चिमोत्तर भारत के कुषाण एवं अवन्ति के महाक्षपत्रों तथा गुप्त साम्राज्य के बीच में भ्रद्रगण से लेकर खरपालिका गण तक अनेक छोटे–छोटे गणराज्य विद्यमान थे। गुप्तकाल में भी राजतंत्र में अनेक गणतंत्र विद्यमान थे जो अपने आन्तरिक मामलों में काफी सीमा तक स्वतंत्र थे। प्रशासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम थी जिसका मुखिया ''ग्रामिक'' कहलाता था।

निष्कर्ष

प्राचीन भारत में ग्राम सभाओं के पास विशाल शक्तियां थी। इन्हें प्रशासनिक एवं न्यायिक दोनों प्रकार क अधिकार प्राप्त थे। वस्तुओ पर कर लगाना तथा भूमि वितरण का कार्य भी पंचायतों के क्षेत्राधिकार में था। रमेशचन्द्र मजूमदार के अनुसार ग्राम सभाएँ गांव की भूमि की पूर्णतः स्वामिनी होती थी। वे ही गांव की ओर से सरकार को राजस्व देने हेतु उत्तरदायी होती थी यदि कोई भूखण्ड स्वामी कर नहीं चुका पाता तो वह भूमिखण्ड ग्राम सभा का हो जाता था।

उपलब्ध साहित्य की समीक्षा :

शोधकार्य करने से पहले शोध विषय के संबंध में आरम्भिक ज्ञान का होना आवश्यक है। यह पूर्व ज्ञान इसलिए भी आवश्यक है कि इसी के आधार पर हम अन्तिम रूप से यह निश्चित कर सकते हैं कि हमने जिस शोध कार्य का चुनाव किया है वह शोध कार्य के लिए उपयुक्त है या नहीं। पूर्व ज्ञान के आधार पर हम अपने शोध कार्य के रास्ते में होने वाली संभावित एवं व्यावहारिक कठिनाइयों का समाधान कर सकते हैं।

भारत में स्थानीय शासन के बारे में बहुत अध्ययन हुए हैं। इन सभी की समीक्षा करना अपने शोध–पत्र को अनावश्यक बढ़ाना ही होगा। इसलिए इनमें से कुछ साहित्य की समीक्षा इस प्रकार हैः–

प्रो. आर. पी. जोशी एवं डॉ. अरूणा भारद्वाज द्वारा लिखित पुस्तक 'भारत में ग्रामीण एवं शहरी स्थानीय शासन' में स्थानीय शासन के विविधि पक्षो यथा इसके अर्थ एवं महत्व से लेकर विकास के विभिन्न चरणों को रेखांकित करते हुए 73वें व 74वें संविधान संषोधन के परिप्रेक्ष्य में स्थानीय शासन की इकाइयों की नवीन संरचना व उनके क्रियाकलापों पर विस्तार से दृष्टिपात किया गया है।

'स्थानीय स्वशासन' (978–93–5167–7512) नामक पुस्तक जो डॉ. रश्मि शर्मा की लिखी हुई है, इसमें भारत में स्थानीय स्वशासन के विकास को विस्तार से बताया गया है।

'पंचायती राज ने नवीन आयाम' (978–81–8198–171–4) लेखक द्वय प्रो. आर. पी. जोशी एवं रूपा मंगलानी की पुस्तक में भी प्राचीनकाल में स्थानीय स्वायत्त शासन, स्वतंत्र प्रभार में स्थानीय स्वायत्त शासन – पंचायती राज संस्थाओं का विकास आदि विस्तारपूर्वक बताया गया है।

एस.आर. माहेश्वरी द्वारा लिखित पुस्तक 'भारत में स्थानीय शासन' (2000) यह पुस्तक स्थानीय शासन के बारे में सारी जानकारी देती हैं। यथा भारत में स्थानीय शासन का इतिहास, प्रशासनिक ढांचा, नगरीय शासन इत्यादि।

संदर्भ ग्रन्थ सूची –

1. भारत में पंचायती राज – जोशी आर. पी.
2. भारत में पंचायती राज – राठोड़, गिरवर सिंह
3. पंचायती राज व्यवस्था – नरूला, बी. सी.
4. भारत में ग्रामीण एवं शहरी विकास – जोशी और भारद्वाज
5. कौटिल्य के अर्थशास्त्र का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन : डा.डी. के. चारण
6. प्रशासनिक विचारक : डा. जे. पी. नेमा